International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 34-38

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 34-38
www.allresearchjournal.com
Received: 20-05-2017
Accepted: 22-06-2017

डॉ. तृप्ति मांझी,
अतिथि व्याख्याता, जनजातीय अध्ययन विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर (म.प्र.), भारत

Correspondence
डॉ. तृप्ति मांझी,
अतिथि व्याख्याता, जनजातीय अध्ययन विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर (म.प्र.), भारत

आर्य–अनार्य, द्रविड़ प्रजातीय निर्धारण के मिथ्या प्रतिपादित सिद्धान्तः एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. तृप्ति मांझी

प्रस्तावना

भारत के कुछ विद्वतजनों ने प्रजातियों को अजायबघर निरूपित किया है, जो उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि मनुष्य पशु–पक्षी नहीं रहा है; अपितु उसे अलौकिक उद्यान कहा जाना उत्तम होगा। विषय केवल आर्य, अनार्य और द्रविड़ तक सीमित है। हम हिन्दू–हिन्दुस्तानी व भारतीय–भारतवासी हैं, जिससे आज के संदर्भ में आर्य, अनार्य, द्रविड़ आदि वैविध्यता तथा पृथकता के द्योतक हैं। लेकिन भूगर्भवेत्ताओं, नृतत्ववेत्ताओं, समाजशास्त्रयों एवं इतिहासकारों के प्राचीन और अर्वाचीन तथ्यों के अनुसंधानों को भावनात्मक दृष्टिकोण से अग्राहय नहीं किया जा सकता। यद्यपि आर्य, अनार्य व द्रविड़ आदि कौन है, ऐतिहासिक संदर्भों में अत्यन्त विचारणीय है। आर्य तो एक निर्विवाद जाति है; जबकि प्राचीन एवं वर्तमान संदर्भ में निषाद और द्रविड़ आदि जातियों के विषय में विवाद और भ्रांतियां हैं। जहां तक आर्य, अनार्य और द्रविड़ के मिथ्या सिद्धान्त के प्रतिपादन में निहित दुराग्रह और षड़यंत्र का विषय है, तो अनेक टीकाकारों ने भी वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि के संबंध में टिप्पणियां की हैं, कि रचियतागण कुछ वर्ग विशेष के रहे हैं, जिन्होंने अपने वर्ग के महत्व को प्रतिपादित किया है और अन्य के गौरवशाली इतिहास को उपेक्षित किया है। वेदादिकाल में जो प्रमुख जातियां–प्रजातियां पायी गई हैं; भूगर्भवेत्ताओं, नृतत्वशास्त्रियों और इतिहासकारों ने मानवमित्तकीय मापदण्डों के आधार पर जब प्रजातीय नामों का निर्धारण या नामकरण किया है, उसमें अंग्रेजों ने अंग्रेजी नामों का उपयोग किया है, जिससे भारतीय समाज आज तक यह नहीं समझ पाया कि ये नाम किन प्रभावशाली प्राचीन जातियों के हैं। यद्यपि कुछ भारतीय विद्वानों ने प्राचीन नामों से जोड़ने की चेष्टा की है, जो आंशिक है। फलस्वरूप निर्धारण के सिद्धान्त मिथ्या बन गये। लेकिन यहां यह कह पाना अत्यन्त कठिन है कि यहां कोई दुराग्रह एवं षड़यंत्र है।

निषाद–आस्ट्रिक

1. "हिन्दी विश्वकोश"[1]: के भाग–4 के "प्रजातीय तत्व" में एच.एच. रिजली और डा. जी.एस. घुरए व अन्य विद्वानों की प्रस्थापना व खण्डन के अनुसार निष्कर्ष दिया गया है कि भारत में निग्रिटों के पश्चात निषाद (आस्ट्रिक) मानव प्रजाति का पदार्पण हुआ है। द्रविड़ का प्रभाव दक्षिण भारत में अधिक है। निग्रिटों, निषाद, द्रविड़, किरात, आर्य आदि का परस्पर व्यापक पैमाने पर रक्त–मिश्रण हुआ है और जिनसे जनजातियों एवं जातियों का सृजन हुआ है। हिन्दी विश्वकोश[2] में दर्शित है कि निषाद संस्कृत का अतिप्राचीन शब्द है, जो "निषीद" शब्द बैठना व बैठाने से बना है और जो विशाल नौकाओं द्वारा यातायात, आयात–निर्यात करने वालों में प्रयुक्त हुआ है। श्रीराम की वनयात्रा में ऐसे ही निषादराज का उल्लेख है। अतिप्राचीनयुग में दक्षिण–पूर्व एशिया से बहुत बड़ा 'जन' समुद्री रास्ते भारत के दक्षिणी भाग में बसा, जिनमें समुद्री व्यापारियों और समृद्धजनों की प्रधानता थी; इन्हें आर्यों ने पहले निषाद नाम दिया, कालान्तर में द्रविण, जो द्रविड़ बन गया। आर्यों के दो स्वतंत्र राष्ट्रों क संघर्ष में सहयोग हेतु आर्यों ने निषादा (द्रविड़ों) का आव्हान किया। ऋग्वेद की एक ऋचा है –

तदथ वाचः प्रथम मंसीय, येनासुरां अभिदेवा असाम।
उर्जाद उत यज्ञिवासः। पंचजनाः मम होत्रं जुषध्यम्।

असुरों का अभिनव करने हेतु प्रयुक्त 'पंचजना' की व्याख्या यास्क ने "चत्वारो वर्णाः पंचमो निषादः" से की है, जिसका आशय है। इतिहासकारों ने द्रविड़ से पृथक आस्ट्रिक जाति की कल्पना की है और उन्हें भूमध्य सागर के फिलिस्तीन से ईराक–ईरान होकर भारत आया माना है, जो अतार्किक है। दक्षिणापत्य निषाद से पृथक आस्ट्रिक जाति की कल्पना निराधार है।

भगवानसिंह[8] ने मनुष्य को 50–60 हजार वर्ष पूर्व समुद्र पार कर भारत के दक्षिणी समुद्रीतटों पर आना, नौका निर्माण करना, मत्स्याखेट करना व पशुपालन करना दर्शित किया है और इन्हें दक्षिण एशिया, दक्षिण–पूर्व एशिया के आस्ट्रिकजनों को माना है तथा इन्हें भारतीय संदर्भ में निषादजन व समुद्रपुत्र कहा है, जिनके अर्थ वधिक और नौकाचालक रहे हैं, जो समुद्रतटों में बस गये व व्यापारिक यात्राओं में विश्व में समुद्र मंथन करते रहे हैं। प्राचीन सभ्यताओं में भारत अग्रणी नौकाचालक देश रहा है, तदुपरान्त चीन। ये अत्यन्त समृद्ध रहे हैं।

आग्नेय परिवार को विद्वानों ने भूमध्य सागर के फिलिस्तीन के साथ आस्ट्रेलिया से भारत में आगमन दर्शाया है और इनके लिये आस्ट्रिक, प्रोटोआस्ट्रेलायड, प्रोटो–द्रविड़ियन आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं, जो पर्याय है। विद्वानों–लेखकों ने यहां आस्ट्रिक–आग्नेय को निषाद मानव प्रजाति दर्शाया गया है, तो कालान्तर में उसे कोल, मुण्डा, सबर, संताल, भील आदि जाति होना दर्शित किया है।

2. रांगेयराघव[3] में हिन्दी विश्वकोश[1 व 2] के परिपेक्ष्य में दर्शित है कि भारत में मनुष्य के अवशेष 1 से 15 लाख वर्ष पूर्व प्राप्त हुये हैं और उस समय हब्शी और निषाद जातियों का निवासरत होना संभव रहा है। निषाद अतिप्राचीन जाति थी और सशक्त थी। आग्नेय जातियों का अस्तित्व दक्षिण–पूर्व मलायाद्वीप से मेलेनेशिया और पोलिनेशिया तक दिखाई देता है। ये उत्तर व दक्षिण भारत में भी पाये गये हैं। द्रविड़, आग्नेयों से घुल–मिल गये थे। द्रविड़ का संबंध समुद्र से रहा है, जो उत्तर–पश्चिम और समुद्र तट पर बसे। द्रविड़ युग में ऋक्ष, वानर, असुर, दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, गंधर्व, किन्नर इत्यादि निवासरत रही है। असुर व तूरानी द्रविड़ परिवार थे। आर्य के आगमन पर उन्हें जातिभेद मिला। दैत्य, दानव, कालकेय, काद्रवेय, मौनेय (गंधर्व) आर्य कबीले नहीं थे। रांगेयराघव[4] में आर्यों के ईरान–ईराक आदि देश से उत्तरी दिशा द्वारा भारत में पदार्पित होना दर्शित किया है। आर्य शब्द उनकी ही देन है।

3. मि. जे.एच. हट्टन[13] ने ''दि रेसियल एफिनिटी आफ दि पीपुल आफ इण्डिया'' में देश में पाये गये कंकालों को निग्रिटों के स्थान पर आस्ट्रेलायड प्रकार का होना माना है, जो वैदिक आर्यों के विवरणों के अनुसार निषाद है, जिसे चांदा रामप्रसाद ने इन्हें प्री–द्रविड़ियन, प्रोटो–आस्ट्रेलायड और वेड्डायड कहा जाना उचित माना है। इसी तरह जे.एच. हट्टन ने इकस्टेडट के हवाले कोलिड और गोडिड को निषादिक जाति होना दर्शाया है। यहां विचारणीय बिन्दु यह उद्‌भूत होता है कि जब वैदिक संदर्भों में प्रोटो–आस्ट्रेलायड, प्री–द्रविड़ियन, वेड्डायड, कोलिड और गोंडिड आदि प्रजातियां निषाद मानवप्रजाति है, तो वेदादि साहित्यों के आधार पर इनके मूल जाति नाम क्या हैं, यह स्पष्ट नहीं हो पाने से स्थिति भ्रांतिमय बन गई है।

मानव उद्‌विकास

4. सृष्टि की आयु किन्हीं विद्वानों ने 10 करोड़ तक, तो किन्हीं ने 4 अरब वर्ष बतायी है। मानव का उद्‌विकास जब से भी प्रारंभ हुआ हो, विषय गौण है। मूल विषय है कि मानव सभ्यता और संस्कृति का विकास कब हुआ। जगदगुरू कृपालुजी महाराज[5] ने हेकल व डार्विन के 8 लाख 20 हजार वर्ष और प्रो. पेरी के 10 करोड़ वर्ष पृथ्वी की आयु को नकारते हुये दर्शाया कि नेवादा में मि. जान टी. रोड ने खुदाई में प्राप्त एक जूते की आयु 60 लाख वर्ष घोषित की, जिसकी सिलाई आज भी बहुत अच्छी है। तब स्वाभाविकतया ही मानव के उद्‌विकास में 50 लाख; अपितु 1 करोड़ वर्ष तो लगे होंगे। उन्होंने अनेक तर्कों के माध्यम से डार्बिन और हेकल की अबीमा से 22 कड़ी और बंदर से मनुष्य बनने के सिद्धान्त का मखौल उड़ाया है और कुछ वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड की विज्ञान महासभा में डॉ. ला की इस बात का समर्थन किया कि आधुनिक विज्ञान की सबसे बड़ी खोज यही है कि हम लोग अभी तक कुछ भी नहीं खोज पाये अर्थात मूलतत्व नहीं समझ पाये। ऐसी स्थिति में विश्व व भारत में पाये गये नरकंकाल, पशु–कंकाल और सभ्यताओं के भग्नावशेष भले ही किन्हीं कालखण्डों के व प्रमाणिक हो सकते हैं, लेकिन उन्हें आर्य, अनार्य, हब्शी, निषाद, द्रविड़, किरात आदि मानव की सभ्यता का कालखण्ड अंतिम माना जाना उचित प्रतीत नहीं होता। यह संभव हो सकता है कि अभी तक हमव ह प्राप्त करने में असफल रहे हों, जो उससे पूर्व के कालखण्डों का रहा हो।

5. रांगेयराघव[3] ने विद्वानों व विशेषज्ञों के हवाले लेख किया है कि पोलियोजोइक काल में गोंडवाना, आस्ट्रेलिया, दक्षिणभारत, दक्षिण अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका का भूभाग परस्पर जुड़ा था। चैसोजोइक काल में भारत और अफ्रीका लेमूरिया नामक भूखण्ड द्वारा मिले रहे। हिमयुग की बर्फ के पिघलने से आये प्रलय में अनेक देश डूब गये थे। मायोसीनयुग में दक्षिण भारत, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि के कुछ भूभाग समुद्र में डूब गये। तदुपरान्त के युग में भारतीय भूखण्ड पृथक और संकुचित होकर उभरा। यहां एक गोंडवाना महादेश रहा है। भूगर्भवेत्ता, कालविभाजन और अवधि दर्शाने में असमर्थ रहे हैं। प्लायोसीनयुग में हिमालय बाहर निकल आया। पूर्व में गंगानदी को द्रविड़ों ने खोंग नदी नाम दिया। गंगा नाम आर्यों द्वारा दिया दिया गया है। अविनाशचंद्रदास के हवाले दर्शाया गया है कि प्रारंभ में आर्य सप्तसिंधुवासी रहे हैं। पूर्व में गंगा–यमुना का मैदान डूबा था। यहां आपत्ति योग्य विचारणीय बिन्दु यह है कि उक्त दर्शित युगों में गोंडवाना और गोंडवाना महादेश भारत में दक्षिण भारत से पृथक कहा गया है। उल्लेखनीय यह है कि वैदिक साहित्यों में और परवर्ती साहित्यों में गोंड और गोंडवाना का कोई उल्लेख ही नहीं है, तो विद्वानों ने किन तथ्यों के आधार पर ये नाम दर्शित कर दिये। यहां जगद्‌गुरू कृपालुजी महाराज[5] में दर्शित 60 लाख वर्ष प्राचीन जूता और रांगेयराघव[3] का हब्शी व निषाद का अस्तित्व 1 से 5 लाख वर्ष पूर्व पाया जाना विचार योग्य बन जाता है। विद्वानों के अभिमत के अनुसार भारत में हब्शी व निषाद प्रपितामह, द्रविड़ पितामह और आर्य पिता के आगमन के कालखण्ड भले ही क्रमिक कालान्तर में हो सकते हैं। इसका कारण हिमालय और गंगा–यमुना कछार का समुद्र होना व मार्ग में बाधक होना रहा होगा। लेकिन जब आर्य सभ्यता का विस्तार रूसी स्टेपीज से ईरान–ईराक आदि देशों तक रहा है, तो तब आस्ट्रेलिया, दक्षिणभारत–अफ्रीका–अमेरिका के एकखण्डीय भूभाग के किन्हीं पथों से उन प्राचीन कालखण्डों में आर्यों का आवागमन निःसंदेह संभव रहा होगा।

गोंडवाना देश

6. उपरिदर्शित गोंडवाना व गोंडवाना महादेश शब्द का जहां तक प्रश्न है, तो उसके प्रवर्तक विद्वानों ने दक्षिण भारत को द्रविड़ देश दर्शाने की चेष्टा की है। गोंड व गोंडवाना प्राचीन शब्द नहीं है। आर.व्ही. रसल तथा हीरालाल[6] ने आलेख 'गोंड' में जनरल कनिंघम, हिस्लाप, जी. गियरसन आदि के हवाले दर्शाया है कि ये तेलगू, तमिल, केनरीज तथा मलयाली भाषी लोग हैं, जो मूलतः ''कोईतूर'' या ''कोई'' नाम से थे और दक्षिण से संभवतः गोदावरी नदी मार्ग से इंद्रावती नदी होकर छत्तीसगढ़, वर्धा, सतपुड़ा पर्वतश्रेणी, जबलपुर, मण्डला, बैतूल, छिन्दवाड़ा आदि स्थानों में बसे और अपना राज्य स्थापित किया। यहां यह बताया जाना आवश्यक है कि तमिल–तेलगू भाषा में नदी को 'वरू' कहते हैं। गोदावरी नदी वास्तव में 'गोदा' है और कावेरी नदी 'का' है, लेकिन वरू शब्द जुड़ने से गोदा+वरू गोदावरी (नदी) और का+वरू कावेरी (नदी) कहलाने लगी। जब छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश में बसे लोगों ने उन्हें पहले गोदा वाले व गोदावासी

कहते–कहते गोडा और अपभ्रंशित शब्द गोंड कहना प्रारंभ किया है। यह काल ई.पू. बारहवीं शताब्दी का रहा है। ऐसी स्थिति में जब दक्षिणभारत आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका–अमेरिका के भूखण्ड से जुड़ा था, तब उसे गोंडवाना व गोंडवाना महादेश के रूप में विभूषित करना और उसे द्रविड़ देश दर्शाया जाना पूर्णतया भ्रांतिकारक है।

7. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन[7] ने यद्यपि मानव उद्विकास में आद्यमानव का अस्तित्व भारत में होना तथा पूर्व पाषाणयुग 1 करोड़ 6 लाख वर्ष पूर्व, पुरातन पाषाणयुग 6 लाख वर्ष पूर्व से 15 हजार वर्ष पूर्व, नव्य पाषाणयुग 15000 से 8000 वर्ष पर्यन्त माना है। उन्होंने सिंधुघाटी की मोहनजोदड़ो की सभ्यता में तृतीय तीर्थकंर सम्भवनाथ की उपस्थिति दर्शित करते हुये उसे प्राग्वेदिक ऋषभ प्रणीतयोग धर्म के अनुयायी–श्रमण संस्कृति के उपासक 'विद्याधर' जाति अर्थात भारतीय द्रविड़ जाति के पूर्वज होना तथा कृष्ण के ताऊजात भाई अरिष्टनेम को तीर्थकंर, ऋषभ का पुत्र भरत चक्रवर्ती होना और उसके भाई का नाम द्रविड़ होना और उसे दक्षिण के द्रविड़ों का पूर्वज होना तथा रांगेयराघव[3] ने शतपथ ब्राम्हण के हवाले पौरव पुत्र दुष्यंत–शकुन्तला से चक्रवर्ती भरत का जन्म नाडीपत नामक स्थान में होना दर्शाया है। चूंकि अनेकानेक विद्वानों ने अपने–अपने अध्ययन और दृष्टिकोणों से नव्य साहित्यों का सृजन किया है, जिससे भारतीय इतिहास विसंगतियों से लबालब हो गया है।

निषाद, द्रविड़, आर्य प्रजातियां

8. प्रजातीयता का निर्धारण–वर्गीकरण निस्संदेह किन्हीं मानव–मित्तकीय मापदण्डों के आधार पर ही हुआ। अनेक नृतत्ववेत्ताओं ने अपने–अपने मानदण्डों का उपयोग किया है, जिससे ही विद्वानों ने भारत को प्रजातियों का अजायबघर बन गया होना दर्शित किया। एम.एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा[9] सहित अनेक विद्वान लेखकों एवं जितेन्दु सरकार 10 व पूजा मण्डला 11 के शोध पेपर आदि में प्रजातियों का प्रस्तुतीकरण प्रकारान्तर से किया गया है, जिससे अनेक भ्रान्तियां उत्पन्न होती हैं। भारत की प्रजातियों के संबंध में प्रायः सभी ने *मि. एच.एच. रिजले* के वर्गीकरण में तुर्की–ईरानियन, इण्डोआर्यन, सीथो–द्रविड़ियन, आर्यो–द्रविड़ियन, मंगोलो–द्रविड़ियन, द्रविड़ियन। *मि. गिउफ्रिडा–रगेरी* ने निग्रिटो, प्री–द्रविड़ियन या आस्ट्रेलायड वेड्डिड (संथाल, उरांव, हो, मुण्डा आदि), द्रविड़ (तमिल, मलयालम, तेलगू, केनरीज आदि भाषा–भाषी), सदर्न ब्राचीसेफलस, वेस्टर्न ब्राचीसेफलस। *मि. ए.सी. हेड्डन* ने निग्रिटों, प्रान्–द्रविड़ (प्री–द्रविड़ियन), (भील, गोंड, संताल, ओरांव, हो, मुण्डा आदि), द्राविड़ (तमिल, मलयालम, तेलगू, कैनरीज आदि भाषा–भाषी), इण्डो–अल्पाइम, मंगोल, इण्डो–आर्यन, सदर्न ब्राचीसेफलस, वेस्टर्न ब्राचीसेफलस; *मि. फान इक्स्टेडस*– बेड्डिड, इन्सीयेन्ट इण्डियन्स उपप्रजातियों सहित व पालेमंगोलायड। *मि. जे.एच. हट्टन*– नीग्रिटों, प्रोटो–आस्ट्रेलायड, भूमध्यसागरीय (मेडेटेरेनियन) उपप्रजातियों सहित अल्पाइन की आर्मिनायड शाखा, मंगोलायड, इण्डो–आर्यन। *मि. बी.एस. गुहा*– निग्रिटों, प्रोटो– आस्ट्रेलायड, मंगोलायड, प्राचीन मंगोलायड उपप्रजातियों सहित भूमध्यसागरीय उपप्रजातियों सहित दर्शाया है।

9. हट्टन एवं गुहा ने मत दिया है कि निग्रिटों के लक्षण कहीं–कहीं देखने को मिलते हैं, वह अब स्वतंत्र प्रजाति नहीं रह गई। प्रोटो–आस्ट्रेलायड में आस्ट्रेलिया मूल के तत्वों का समावेश है, जिसको संस्कृत साहित्य में निषाद तथा फान इस्केटड्स ने वेड्डिड शाखा का उल्लेख किया है, जिनकी व्याप्ति दक्षिण भारत, मध्यप्रदेश में भील व चेंचू जनजातियों में पायी जाती है। भूमध्यसागरीय, जो मिश्रित है और कन्नड़, तमिलनाडू, मलयालम भाषा–भाषी प्रदेश में निवासरत है। इसकी तीसरी शाखा पंजाब, सिंध, राजस्थान, पश्चिमी उत्तरप्रदेश में पायी जाती है। चौड़े सिर वाले– अल्पाइन, डिनारिक, आर्मिनाइड गुजरात, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यभारत तथा डिनारी बंगाल, उड़ीसा, काठियावाड, कन्नड व तमिल भाषा–भाषी और बम्बई के पर्सियों में पायी जाती है। नार्डिक पंजाब से अन्यत्र फैली, सिन्धुघाटी, पंचकोट–कुनार, चितराल नदियों की घाटियों में, हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण व कश्मीर, पंजाब, राजस्थान आदि में पाये जाते हैं। मंगोलायड असम व सीमांत प्रान्त, चटगांव, वर्मा आदि में व्याप्त हैं। उपरिदर्शित विवरणों से स्पष्ट है कि निषाद, द्रविड़, आर्य आदि कोई भी मानवप्रजाति भले ही कहीं से भारत में पदार्पित हुई है, वह काल और परिस्थिति के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में निवासरत रही है। प्रमुख प्रजातियां तो देशव्यापी हैं। सभी ने सर्वत्र ही अपनी संस्कृति विकसित की और परस्पर संबंध बनने और रक्त–मिश्रण होने से लुप्त भी होती गई है। *मि. ए.सी. हेड्डन* ने गोंड को संथाल, हो, मुण्डा आदि के साथ माना है, जबकि उसे द्रविड़ माना जाता है, जो भ्रांति दर्शित करता है।

आर्य–द्रविड़–निषाद भाषा

10. भाषाविदों ने प्रजातियों की बोली का निर्धारण किया है। स्मितिचंद[12] ने अपने शोध निबंध में उच्चारण में ध्वनियों के आधार पर विभिन्न कालखण्डों में एशिया के मध्य, पूर्व, पश्चिम के अध्ययन उपरान्त उनके भारत में पदार्पण पर सांस्कृतिक समिश्रण पर निष्कर्ष दिया है, जिसमें चार प्रमुख भाषा परिवार– इण्डो–यूरोपियन, द्रविड़ियन, आस्ट्रिक (निषाद), सीनो तिबेतन (किरात) माने है। इण्डो–यूरेपियन को आर्य परिवार और उसे भाषा की दृष्टि से अधिसंख्यक के साथ सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण माना है। आर्यन बोली में दार्डिक आर्यन और इण्डोआर्यन है। दार्डिक आर्यन भाषी कश्मीर का पर्वतीय लघु परिवार है, जो तीन शाखाओं (अ) शीना, (ब) खोतर या चट्रान या चित्राली (स) कफूइस्तान या कफूइस्तानी बोली बोलते हैं, जो संस्कृत से प्रभावित है। कश्मीरी दार्डिक की तुलना इण्डोआर्यन बोली से की है। इण्डोआर्यन बोली का प्रभाव उसकी शाखायें हिन्दी, बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, सिंधी, कच्छी, मराठी, उड़िया, संस्कृत, असमी और उर्दू में है। उत्तरी आर्य बोली में उत्तर–भारत के पर्वतीय नेपाली, मध्य और पश्चिमी पहाड़ी है। उत्तर–पश्चिमी आर्य बोली में खाण्डा, कच्छी, सिन्धी; दक्षिणी आर्य बोली में मराठी, कोंकणी; पूर्वी आर्य बोली में बिहारी, उड़िया, बंगाली, असमी है। मध्य आर्य बोली में हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी व अलावरी है। द्रविड़ियन बोली आर्य बोली से पुरानी है। आर्य, आस्ट्रिक (निषाद), सीनो तिबेतन बोली भारत के बाहर की नहीं है। उत्तरी द्रविड़ियन की तेलगू में गोंडी, कुरूख या ओरांव, मालेर या पहारिया, कुई या कांध, परजी, कोलमी तथा दक्षिणी द्रविड़ियन में तमिल, कन्नड़, मलयालम सम्मिलित है। जिसमें संस्कृत के शब्दों का समिश्रण है। आस्ट्रिक (निषाद) बोली मुण्डा व मान–ख्मेर में विभक्त है। मुण्डा–कोल बोली में प्रमुख खैरवारी (छोटा नागपुर, ओडिसा, छत्तीसगढ़, पश्चिमी बंगाल) है, जिसमें संताली, मुण्डारी, हो, बिरहोर, भूमिज, कोरबा, कोरकू सम्मिलित है। मान–ख्मेर बोली खासी, निकोबारी बोलते हैं। सिनो–तिबेतन के तिबेतन हिमालयन में (अ) हिमालयन (ब) भूरिया समूह है। साथ ही उत्तर असम, असम म्यामारी है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारत में आर्यों का आगमन जब भी हुआ हो, वह दक्षिण भारत के तमिलनाडू, तेलगू, मलयालम, कैनरीज आदि प्रदेशों को छोड़कर शेष राज्यों में आर्य बोली विभिन्न शाखा के रूप में बोली जाती है। आस्ट्रिक (निषाद) कुछ राज्यों में कुछ जनजातियों की बोली रह गई है। द्रविड़ बोली दक्षिणी प्रदेशों तक सीमित है। मंगोलायड भी पर्वतीय हिमालयी राज्यों तक सीमित है। आर्य संस्कृति का निरंतर विकास ही उसकी व्याप्ति का आधार रहा है।

प्राचीन जातियां

11. रांगेयराघव[3] ने वैदिक इन्डैक्स व बहियों के हवाले जिन मानव प्रजातियों का उल्लेख किया है, उनमें असुर, दक्ष, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, अप्सरा, सिद्ध, किम्पुरूष, देव, दैत्य, दानव, पिशाच, आन्ध्र, पाण्डुवानर, गरूड़, नाग, ऋक्ष, गंधर्व, पणि, किन्नर, भूत–प्रेत आदि रही है, जिनमें से दैत्य, दानव, मय, पणिय आदि को द्रविड़ परिवार की और यक्ष, गंधर्व, किन्नर, राक्षस, ऋक्ष, बानर आदि को किरात परिवार की जातियां माना गया है। वैदिक युग में पायी गई– श्विवन, निषाध, स्पर्शु, वरशिख, वश, कुरू, पंचाल, उशीनर, मत्स्य, मारगर, कैवर्त, केवर्त, पौजिस्ट, दाश, मैनाल, कीकट, नैचाशाख, पुण्ड्र, निषाद, किरात, चाण्डाल, पर्णक, शिम्यू, आंध, शबर, पुलिन्द, मूतिप आदि जातियां और महाभारत काल में निषाद, मेकल, द्रविड़, लाठ, पुण्ड्र, कण्डशिरस, चौण्डिक, दरद, दख, चौर, शवर, बर्बर, किरात, यवन आदि जातियां पायी गई हैं। बी.पी. काने ने 1000 ई.पू. वर्ष पूर्व की जिन जातियों का उल्लेख किया है, वे अज्ञापाल, अन्ध्र, अमस्ताप, अयोयू, अविपाल, आंद, इक्षुकार, उग्र, कण्टककार या कण्टकीकरी, कर्मार, कारि, कितव, किरात, किनास, कुलाल या कौलाल, केवर्त, कोशकारी, क्षेत्र, गोपाल, चर्मन्म, चाण्डाल, जम्मक, ज्याकार, वक्षण, दास, धनुष्कार या धनवाकार या धनवक्य, धैवर, निषाद या निशाद, पुंश्वलु, पुन्जिट या पौन्जिष्ट, पुण्ड्र, पुलिन्द, पौल्कस, बैन्द, भिषक, भीमल, मणिकार, मागध, मारगर, मूलिब, मृगयु, मैनाल, राजमितृ, रज्जुसर्ग या रज्जुसर्ज, रथकार, राजपुत्र, रेभ, बंशनर्वी, वप (नाई), वाणिज, वासपलपुली (धोबिन), विदालकारी या विदलकारी, ब्रात्य, शवर, शाबल्य, शैलूष, श्वानिन या श्वानित, संगृहीत, सुसकार, सूत्र, सेलग, हिरण्यकार सहित 63 जातियां तथा 500 ई.पू. की जातियां– अन्त्य, अन्त्यज, अंतावसायी या अत्यावसायी, अभिषिक्त, अम्बष्ठ, अमस्कार, अवरोट, अविर, आपीत, आमीर, आयोगव, आवन्त्य, आश्विक, अहिण्डिक, उद्बंधक, उपत्रुष्ट, ओड्र, कटकार, करण, कर्मकार, कर्मार, कांस्यकार, काकवच, काम्बोज, कायस्थ (नवीन), कारावर, कारूष, किरात, कुक्कुट, कुण्ड, कुकुण्ड, कुंभकार, कुलिक, कुशीलव, कुत, कोलिक, क्षत्र, खनक, खस, गुहक, गोज या गोद, गोप, गोलक, चूकी, चर्मकार, चाकिक, चीन, चन्चु, चूचुक, चैलनिणेजक, जालोपजीवन, झल्ल, डोम्ब, तक्षण, तंतुवाय, ताम्बूलक, ताम्रोपजीविन, तुन्नवाय, तैलिक, दरद, दास (मछुए), दिवाकीर्त्य, दोषमन्त, द्रविड़, दिग्वण, धीवर, ध्वजी, नट, नर्तक, नापित, निच्छिति, नैषद (चातुर्वण्य के अतिरिक्त), पहलव, पाण्डुसौपाल, पारद, पारशव, पिंगल, पौण्ड्रिक, पुलिंद, पुल्कस, पुष्कर, पुष्पथ, बंदी, बर्बर, बाहय, बुरूड, भट, भिल्ल, भूप (वैश्य+क्षत्रिया), भुर्जकण्हक, भोज, मग्दु, मत्स्यबंधक, मल्ल, माराविक, मतंग, मार्गव, मालाकार/मालिक, माहषि, मूर्धावसिदव, मृप्तव, मेद, मैत्र, मैत्रेयक, मलेच्छ, रावन (प्राचीन), रंगावतारी, रजक, रन्जक, रथकार, रामक, लुब्धक, लेखक, लोहाकार, बंदी, बराट, बरूड, वाटधान, विजन्मन, वैवा या वैण, वैरूक, वैदेहक, व्याध, ब्रात्म, शक (परवर्ती), शवर, शालिक, शूलिक, शैख, शैलूष, शौण्डिक, श्वपच या श्वापाक, सात्वत, सुधन्वाचार्य, सुवर्ण, सुवर्णकार, सूचक, सूचिक, सूत, सूनिक, सौनिक, सैरिध्र, सोपाल, सुदूहन्वन आदि 145 जातियां दर्शायी गई हैं।

12. उक्त पैरा में दर्शित वैदिक युगीन जातियों में दैत्य, दानव, मय व पणिय को भले ही द्रविड़ परिवार (भाषायी दृष्टि से) की जाति कहा है, लेकिन द्रविड़ नाम की कोई जाति नहीं रही है। 1000 ई.पू. की जातियों में द्रविड़ जाति नाम नहीं है, जबकि 500 ई.पू. की 145 जातियों में द्रविड़ एक जाति है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह इतनी विशाल जाति नहीं रही है, कि जिससे वह विशाल प्रजातीय स्वरूप में आ सकने में समर्थ हो। मंगोलायड प्रजाति की किरात जाति उक्त कालखण्डों में सर्वत्र पायी गई है। निषाद (आस्ट्रिक या आग्नेय परिवार) उक्त सभी कालखण्डों में निषाध, निषाद, नैषद, नैषाद और उसकी शाखायें धेवर, धीवर, कैवर्त, केवर्त, मत्स्यबंधक के अतिरिक्त शवर तथा 500 ई.पू. में भिल्ल (भील) जाति पायी गई है। वैदिक व उत्तरवैदिक काल की प्राचीन जातियां संभवतः आर्ययुगीन वर्ण व्यवस्था में समाहित हो गई और मनु, भीष्मपितामह व अन्य पुरूष सूत्रों के अनुसार प्राचीन जातियां, जो कर्म आधारित रही हैं, उन्हें चातुर्वण्य में डाल दिया गया हो, जिससे वे अपने मूल नामों को विस्मृत कर नये प्राप्त नामों से समाज में रूढ़ हो गई हो। यहां उल्लेखनीय यह भी है कि जिन्हें हम निषादिक (आग्नेय, आस्ट्रिक) और द्रविणीय जनजातियां मानते हैं, उनका भी कोई ऐसा उल्लेख उक्त किन्हीं भी कालखण्डों में नहीं मिलता, कि कौन सी जातियां निषाद परिवार की है और कौन सी द्रविड़ या किरात परिवार की। यह भी स्पष्ट नहीं है कि कौन सी जातियां चातुर्ण्य व्यवस्था में किन वर्णों के अंतर्गत आती हैं।

13. आर्यों का जहां तक संबंध है, तो उसे कालान्तर में भारत में ईरान, ईराक, अफगानिस्तान, हिन्दुकुश पर्वत के मार्ग से अनेक कबीलों के रूप में पशुपालन करते हुये पदार्पित होने तथा पूर्व से बसी निषादादि जातियों से संघर्ष, समन्वय, मैत्री करते हुये भारत के सप्तसिंधु, गंगा–जमुना के कछार में बसी और उन्होंने अपनी संस्कृति व प्रभाव का विस्तार किया, जो आर्यावर्त कहलाया। विद्वानों का मत है कि सिन्धुघाटी की मोहनजोदड़ो व हड़प्पा की निषादिक सभ्यता–संस्कृति के काल में उनका अस्तित्व पाया गया है। प्राचीनकाल में निषादों के अनेक बड़े–बड़े राज्य वैदिक काल से महाभारत काल तक रहे हैं, जिनने निषादराजगुह, हिरण्यधनु, एकलव्य आदि के विशाल राज्य नदियों व समुद्रतट पर रहे हैं, जो महाभारत के युद्ध में वध या पराजय के कारण व आर्यों के बढ़ते प्रभुत्व से निर्बल हो गये। प्राचीन जाति होने की दृष्टि से निषाद जाति का उल्लेख ऋग्वेद की ऋचा में इस प्रकार दर्शित है –

> ''मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्रवान्विभर्ति '' ।।८।। (ऋग्वेद – 3,59,8)

''शत्रुओं को पराभूत करने में सक्षम, सामार्थ्यशाली मित्रदेव के लिये पांचों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) आहुति प्रदान करते हैं। वे मित्र देव अपनी सामर्थ्य से सभी देवताओं को धारण करते हैं''।।8।।

तथा अथर्वेद की ऋचा में इस प्रकार दर्शित है –

> ''एतु तिस्त्रः परावत एतु पञ्च जनॉ अति। एतु तिस्त्रोऽति रोचना यतो न
> पुनरायति शश्रवतीभ्यः समाभ्यों यावत् सूर्यो असद दिवि '' ।।३।। (अथर्ववेद – 6,77,3)

''वह शत्रु तीनों भूमि तथा पांचों प्रकार के जनों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) से दूर चला जाए। वह ऐसे स्थान में पहुँचे, जहां सूर्य और अग्नि का प्रकाश भी न हो । द्युलोक में जब तक सूर्यदेव हैं, तब तक वह , लौट न सकें'' ।।3।।

द्रविड़ की उत्पत्ति

14. जहां तक द्रविड़ शब्द की उत्पत्ति व व्याप्ति का प्रश्न है, तो उपरिदर्शित पैरा में हिन्दी विश्वकोश[1 व 2] एवं भगवानसिंह[8] में दर्शित है कि दक्षिण के समुद्रतट में युग–युगान्तर से पदार्पित निषादजन वृहत नौकायानों द्वारा दूर–दूर के देशों में व्यापारिक यात्रायें करते थे, जो अत्यन्त समृद्ध थे। उदाहणार्थ, रावण की लंका स्वर्णमयी होना दर्शायी गई है। यह कहा जा सकता है कि समृद्ध निषादों के कोषों में अतुलित द्रव्य (धन) होने से आर्यों ने उन्हें द्रव्यवान कहा होगा और कालान्तर में वह द्रव्यीण, द्रव्यिन होकर द्रविण, तदुपरान्त द्रविड़ शब्द बना होगा और तब प्राचीन

निषाद जाति से पृथक होकर द्रविड़ एक नई जाति में रूढ़ हो गये होंगे और उन्होंने अपनी द्राविण्यता (अतुलित धन) के सामर्थ्य पर सम्पूर्ण दक्षिणी भारत के राज्यों तथा यत्र–तत्र में अपना विस्तार किया होगा।

उपसंहार

15. जहां तक अनार्य जाति शब्द का तात्पर्य आर्य जाति से इतर निषाद (आस्ट्रिक, प्रोटो–आस्ट्रेलायड, आदि द्रविड़, अपने पूर्ववर्ती निषाद जाति नाम को छोड़कर) चार वर्ण के अतिरिक्त पांचवां वर्ण जैसा कि ऋग्वेद की ऋचा से स्पष्ट है तथा किरात (मंगोलायड) जाति सहित जातियों व जनजातियों से है। वैदिकयुग में भी विशिष्ट पेशों की जातियों का उल्लेख पाया गया है। तदुपरान्त समाज की बढ़ती आवश्यकता के अनुसार प्रजातियों का जातियों में और जातियों का उपजातियों, समूहों और विभाग–उपविभागों में समाज की मांग, सुविधा, स्थान, वर्णसंकरता व सामाजिक परिस्थितियों के कारण निरन्तर विभक्तिकरण होता रहा है, जो आज भी है। यह केवल जातियों में नहीं; अपितु अनार्य–आदिम जनजातियों में भी होता रहा है। जातियों के विभक्तिकरण में मनु, भीष्म आदि अनेकों के पुरूष–सूत्रों की भी भूमिका रही है, जिसने नई–नई जातियों का सृजन किया है। आर्य जाति के ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण भी उक्तानुसार निरन्तर विभक्त होते गये है और उनमें भी ऊंच–नीच का भेद पनपा है। वैदिक एवं उत्तरवैदिक युग और उनके पूर्ववर्ती युग में भले ही वर्ण व्यवस्था प्रभाव में आयी हो, लेकिन कर्म के आधार पर उस समय ब्राम्हण जाति के लोग, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बन जाते थे। इसी तरह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी ब्राम्हण बन जाते थे। ये सभी अपने अधोकर्मों के कारण शूद्र और पतित जातियों में मान लिये जाते थे।

वेद, रामायण, महाभारत, उपनिषदों, पुराणों तथा शोध साहित्यों में दर्शित तथ्यों के परिपेक्ष्य में आर्य, अनार्य, द्रविड़ आदि विभिन्न प्रजातियों एवं आदिमजातियों–जातियों के अध्ययनों से ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि रचनाकारों ने किन्हीं दुराग्रह या षड़यंत्रवश मिथ्या सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया हो; क्योंकि भारतीय धर्म साहित्य एवं शोध साहित्य इतना विपुल व असीम है, कि न तो उसका पूर्ण व सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकता और न ही सीमित शब्दों में अवतरित किया जा सकता है। यदि हम यह मानते हैं कि आर्य, अनार्य, द्रविड़ आदि के मिथ्या सिद्धान्त के प्रतिपादन में निहित दुराग्रह या षड़यंत्र है, तो वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि रचियता भी टीकाकारों के इन आक्षेपों से बच नहीं पायेंगे, कि उन्होंने अपनी रचनाओं में निश्चित वर्णों–वर्गों को महत्व दिया है। यह अवश्य ही कहा जा सकता है कि पाश्चात्य नृत्तवशास्त्रियों ने प्राचीन भारतीय जातियों को अपने वर्गीकरण में समायोजित नहीं किया। उन्होंने भारतेतर प्रजातियों का भारत में पदार्पित होकर अपनी सभ्यता और संस्कृति को प्रस्थापित किये जाने एवं भारतीय मूल प्रजातियों के इतर अन्य प्रजातीय नामों को थोपने/प्रस्थापित करनेकी चेष्टा की है, जो भारतीय जातियों, प्रजातियों के प्रति दुराग्रह का द्योतक बन जाता है।

संदर्भ साहित्य

1. हिन्दी विश्वकोश – खण्ड–4 नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. हिन्दी विश्वकोश – खण्ड–6 नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
3. रांगेयराघव – भारतीय प्राचीन परम्परा और इतिहास
4. रांगेयराघव – महायात्रा गाथा
5. जगद्गुरू कृपालुजी महाराज – प्रेमरस सिद्धान्त
6. आर.व्ही. रसेल तथा हीरालाल – दि ट्राईब्स एण्ड कास्ट्स आफ सेन्ट्रल प्रोविन्सेस आफ इण्डिया
7. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन – भारतीय इतिहास एक दृष्टि
8. भगवानसिंह – भारतीय सभ्यता की निमिति
9. एम.एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा – सामाजिक मानवशास्त्र
10. जितेन्दु सरकार (शोधकर्त्ता) के पेपर – रेसियल क्लासिफिकेशन आफ इण्डियन पीपुल्स
11. पूजा मण्डल – क्लासिफिकेशन आफ इण्डियन रेसेस (निबंध पेपर)
12. स्मितिचंद – इण्डियन लेन्गुएज : क्लासिफिकेशन आफ इण्डियन लेन्गुएजेस
13. जे.एच. हट्टन – जनगणना 1931